

## प्राक्कथन

- ब्र विद्युल्लता शहा, सोलापूर.

मानव जन्मकी सफलता सम्यक् पुरुषार्थपर निर्भर है । पुरु + शोते से बना है पुरुष अर्थात् पुर = उत्तम चैतन्य गुणोंमे, शोत स्वामी होकर जो प्रवृत्ती करता है अथवा अधिष्ठाता रूपसे निवास करता है उसकी संज्ञा है अपना स्वाधीन भाव जितना उत्तम चैतन्यकी और बढे उतना सम्यक्पुरुषार्थ है । यह मात्र एक कटु सत्य है कि, पुरुषार्थकी गली संकरी और मंजिल लंबी है । पूजा उस लंबी मंजिल तक पहुचानेमे सहाय्यक है ।

श्राविकाश्रम भ. महावीर मंदिर एक सातिशय क्षेत्रा है सातिशयता इसलिये कि, हरवर्ष यहां के मंदिरजी मे अष्टान्हिका पर्व तीन बार धूमधामसे मनाया जाता है ।

माताजी पं. सुमतीबाईजी यह जिद्द करती है कि, हा परिस्थिती मे सुंदर रंगवेलीका मंडल बनाकर उसपर नंदीश्वर प्रतिमाजी विराजमान करना तथा उपर चांदोबा लगाना, रोषानाई झलकाना, बाजे बजाना आदि प्रभावनापूर्वक ५२ श्रीफल सहित उत्तमोत्तम अष्ट द्रव्योंसे नंदीश्वर विधान संपन्न करना उनकी जिद्द हम पूरी कते है । और उसका फल आनंद पाते है । और संस्थानगर का सार वातावरण मांगलिक बनता है ।

समाजकी सारी श्राविकाएं इसमे सक्रिय सहयोग देकर अष्टान्हिका आठ उपवासोद्वारा प्रभावना करती है ।

सौ. श्रीकांत चद्रकांत दोशी ने ऐसीही प्रभावना करके व्रत संपन्न किया था । जो प्रसंग अविस्मरणीय रहा है । आश्रमकी छात्रावृंद तथा अध्यापिक सभी मंत्रमुग्ध होकर अनायसेही सुसंस्कारित होती है ।

नित्य और नैमित्तिक रूपसे पूजा की जाती है । किसीभी मंगल कार्य के प्रारंभ मे अपने आराध्य देवताकी पूजा की जाना व्यवहार है । वैसे तो नवनिर्मित गृहप्रवेश के शुभ अवसरपर वास्तुशांती जैसी पारंपारिक पूजा करना कोई आश्चर्य नहीं है; फिरभी उस परंपरासे कुछ ऊपर उठकर श्री सिद्धचक्रविधान पूजा करना औचित्यसे नाहर नहीं है ।

उपादान कारणं सदृशां हि कार्यमिति इस उक्तीके अनुसार श्री सिद्ध विधान पूजा करना स्वयंकी अंतःप्रेरणा होते हुए भी, श्री नाभिराज आ. नारकरने बताया कि, इस पूजाके प्रेरणा श्रोत है माताजी पद्मश्री पं सुमतीबाई शहा ।

फूल छोटासा होता है किन्तु अपने विकासके समयपर अपनी जगह खड़ा होकर खिल उठता है और पास पड़ोस को -सुगंधि देता है; तो आश्चर्य मुझे भी नहीं हुआ, यह देखते हुए की सोलापूर जैसे महानगर की चारो ओरसे श्रावक श्राविकाएं भक्तिभावसे इस पूजामे लगातार आठ दिन तक उपस्थित रहे। सर्वेणामविरोधेन पूजाकर्म समारभेत इस उक्तिका अच्छा परिचय हुआ। वैसे तो पूजा उद्घोषणाओंकी रट लगाना तथा बहस करनाही अधिक होती है उसपर पू. वीरसागर महाराजका अध्यात्मसार गर्भित प्रवचन अंकुश लगाता है। प. पू. १०८ श्री वीरसागर महाराज के प्रवचन ऐसे लगे जैसे शुद्धात्मा गुणोंका स्वाभाविक रूपसे धारण हो ऐसा कह रहे हो तथा आचरण के चरण बढ़ानेका निश्चय प्रदान करनेमे समर्थ हो।

इस पूजा का निष्ठापक पद था मानवत निवासी श्री. लालचंद हरिश्चंद्र श्री. नारकरजीके मित्र है। कभी कभी आकस्मिक घटनाएँ मानवी स्वभावका सहज परिचय देती है। श्री लालचंदजीको निमंत्रण पत्रिका न मिलनेपरभी समयपर उपस्थित रहना औपचारिकतासे आगे बढ़ता हुआ चरण दिखा। अनुराग विद्युत्की भांति होता है; जो उन्हे मानवतासे सोलापूरतक खींच लाया।

लगातार आठ दिन श्रावक श्राविकाओंका झुंडसा बना रहा; ये ठीकही है, आनंद बाटना चाहिए क्यों कि आनंद जुड़वा पैदा हुआ था। पूजाके शब्दार्थ अनेक हो सकते हैं। पवित्र होना यह भी एक अर्थ है, किसे होना है पवित्र? पूजकको, जो प्रमादवश पवित्रताको मलीन करता है। पूजा इस मलिनताको धोनेकी अध्यात्मिक प्रक्रिया हो सकती है।

पूजामे प्रयुक्त शब्दोंने श्री सिद्ध भगवानके अनंत गुणोंको खोलकर सामने रखा। पं. संतलालजीने इस पूजा को रचकर अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। वैसे देखा जाता है कि, प्रतिभा कार्योको प्रारंभ करती है। फिरभी परिश्रमके बिना वह कार्य पूर्ण नहीं होता। अठारहशतीके इस विद्वान पंडितने दशलक्षणिक पूजा तथा इस श्री सिद्धचक्र विधान पूजा की रचना करके अपनी प्रतिभाके साथ महती परिश्रमका भी परिचय करवाया। महाकवि कालिदासने कहा है, न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ( चंचल चकनेवाली बिजली पृथ्वीतलस निकला नहीं करती। ) अर्थात् उत्तम वस्तुकी उत्पत्ति ऊँचे स्थानसेही होती है।

पूजा का ध्येय क्या है, उसके प्रकार कितने हैं, विधी क्या है आदि प्रश्नोंकी उत्तर खोजना एक विशाल ग्रंथका निर्माण करना है। जो हमारे अनेक आचार्योंने किया भी है। उन ग्रंथोंको सार रूपभी रखना विशाल कार्य है। मैं तो उन ग्रंथोको आधारसे इतनाही कहूंगी कि पूजा का ध्येय तो निर्विकल्प समाधी है जो आनंदका भंडार है जीवनमे और होनाही क्या?

जीवनके उद्देशके संबंध मे कितनाभी प्रश्न पुछो और कितनेभी उत्तर ढूंढो सही उत्तर तो निर्विकल्प समाधीही होगा। शब्द कोई भी हो ब्रम्हानंद, चिदानंद, आत्मदर्शन, चैतन्यानंद आदि ।

यह जो सिद्ध पूजा है, उसमे आठ दिन पूजा चलती है और २०४० अर्घ्य है । भगवान के शुद्ध गुणोंका स्मरण है। मूलतः दो प्रकारसे किया है । एक सिद्ध भगवान विकार-कषायोंसे रहित है ; दुसरा सिद्ध भगवान गुणसहित है । जैसे कर्मरहिताय नमः अनंतगुण स्वरूपाय नमः कुछ लोग शंकित होते है कि, जो गुण है उनका चिंतन ठिक है किन्तु जो गुण है हि नहीं उनका क्या चिंतन करना ? उनका यह शंकित होना यह भूला देता है कि, कर्मादिकलंकसे रहित होना है। किससे रहित होना है यह तो समझानाही किससे रहित होना यह बतलाता है ।

इसके अतिरिक्त इस पूजामे जिनसहस्रनामोमेसे ५७५ नामोंका स्मरण किया है । वैसे तो लक्षणोंसे तो पूर्ण सहस्रनाम आही जाते है किन्तु शब्दोंमे भेद है । जैन साहित्यमे पांच सहस्रनाम है । जिनमेसे श्री जिनसेन आचार्य और पं. आशाधरकृत अधिक प्रसिद्ध है ।

पं. संतलालजी की काव्य प्रतिभा, विद्वता, रचना कौशल्य आदिकी चर्चा यहां में करना नही चाहती, जो निर्विवाद है सब लोग काव्य चाहते है। ऐसा नही है और जो कहना है यह शत प्रतिशत काव्य केद्वारा समझाया जायेगा ही ऐसा भी नही है । क्यों कि काव्य की कुछ मर्यादाएं होती है जैसे छंदमात्रा, श्लोक ,चरण आदि ।

इस अपूर्तीको इस पुस्तिकाने निकाला है । गद्यरूप जो है अधिक विस्तारसे लिखा है । गमो सिद्धाणं यह नाम सार्थ है, क्योंकि सिद्ध भगवानकीहि पूजा है । विस्तारको देखतेहुए मुझे यह कहना होगा कि, लेखकने कम शब्दोंमे अधिक भाव स्पष्ट करनेका सफल प्रयत्न किया है। स्पष्टीकरणमे विविधता है . उदाहरण है, दृष्टांत है, प्रश्नोत्तर है । कहना होगा कि, इस श्रमसाध्य कार्यका दायित्व उन्होने बडे मनोयोग निष्ठा और तत्परतासे किया है । जिसे पढकर इसको उपादेयता सिद्ध हो जाती है ।

श्री. लालचंदजी लेखक है और प्रस्तुत विश्लेषण यह भी सिद्ध करता है कि आप अध्यात्म के मर्मज्ञ भी है वर्तमानमे सोलापूर महानगरमे प पू १०८ श्री वीरसागर मुनी महाराज है, लालचंदजी उनके सहाध्यायी ( जैन धर्मशास्त्रके ) है। इस पुस्तिका लेखनमे महामहिमोध्याय पं. नरेंद्रकुमारजी शास्त्रोका अच्छा मार्गदर्शन रहा ।

यह पुस्तिकाको पढनेपर वाचक कहे गा कि,परिश्रमका प्रासाद सुंदर बनानेवाला यह विश्लेषण है इसकी सफलता तब है जब वास्तवमे हमारा हृदय तत्त्व पूज्य मे ठहर जाये ; क्योंकि हम पूजक हैं ।

यह एक सफल कृति है इसका स्वागत हृदयसे होना चाहिये ।

णमो सिद्धाणं - १

सिद्धाः निष्ठिताः कृतकृत्याः सिद्धसाध्याः नष्टाष्टकर्माणः ।

जो निष्ठित अर्थात् पूर्णतः अपने स्वरूपमें स्थित है , कृत्यकृत्य है, जिन्होंने अपने साध्यको सिद्ध कर लिया है, और जिनके ज्ञानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो चुके हैं , उन्हें सिद्ध कहते हैं ।

निष्ठित का अर्थ तो ऊपर कह चुके हैं । अब कृत्यकृत्यका स्वरूप बताते हैं । मैं नहीं आचार्य बताते हैं ।

जो करने योग्य कार्योको कर चुके हैं वे कृत्यकृत्य हैं ।

आगे इसके संबंधमें ही एक मनोरम वर्णन सुनिये । जैन शास्त्रोंमे ऐसा मनोहरा वर्णन तो प्रचुरतासे है तथा सुचारु रूपसे यत्र-तत्र है । देखिए, पढिए , चिंतिये. आनंद लीजिए ।

हाथोंसे कोईभी करने योग्य कार्य शेष न रहनेसे जिन्होंने अपने हाथोंको नीचे लटका रखा है, गमनसे प्राप्त करने योग्य कुछभी कार्य न रहनेसे जो गमनरहित हो चुके हैं, नेत्रोंके देखने योग्य कोई भी वस्तु न रहनेसे जो अपनी दृष्टिको नासाग्रपर रखा करते हैं, तथा कानोंसे सुनने योग्य कुछ भी शेष न रहनेसे जो आकुलता रहित होकर कानभी एकान्तमय हो गये हैं । एकान्त स्थानको प्राप्त हुए हैं, ऐसे वे ध्यानमे एकचित्त हुए भगवान् जयवंत होंगे ।

सिद्ध प्रतिमाको देखिए और चिंतन कीजिए । पुरुषार्थ सिद्धयुपायमे आचार्य बताते हैं ।

सर्वं विवर्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति ।

भवति तदा कृतकृत्यः सम्यक्पुरुषार्थं सिद्धिमापन्नः ॥

( जब यथास्थित पुरुषार्थके सिद्धिको प्राप्त अशुद्ध आत्मा संपूर्ण विभावोंसे परे-दूर जाकर निष्कषाय चैतन्य स्वरूपको प्राप्त करता है । तब यह आत्मा कृतकृत्य होता है । )

वैसे तो सिद्धजीव से कहै, इसका स्वरूप तो विस्तीर्ण रूपसे आगममे है , फिरभी कुछ बताना चाहूँगा. चिंतनकेलिए

१ जो तीन लोककेमस्तककेशिखर स्वरूप है , वे सिद्ध हैं ।

२ जिन्होंने सर्वांगसे संपूर्ण पदार्थोंको जान लीया है , वे सिद्ध है ।

३ जो वज्रशिला निर्मित अभगन प्रतिमा के समान अभेद्य आकारसे युक्त है, वे सिद्ध है

।

४ जो सब अवयवोंसे पुरुषाकार होनेपर भी गुणोंसे समान नहीं है क्योंकि पुरुष संपूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंकी भिन्न

देशमें जानता है, परंतु जो प्रति प्रदेशमें सब विषयोंको जानते है , वे सिद्ध है ।

सिद्ध जीवोंका वर्णन मैं क्या करूँ ? मैं तो अल्पमति बड़ेबड़े आचार्य स्वयंको अल्पमति संबोधित करते है , मैं तो सचमुच अल्पमति हूँ । मैंने संसार ( कषायरूप ) रचा है , उसमें ही धूम मचा कर स्वयंको बचा रहा हूँ फिरभी अनहोनीसे बनकरिके ( इति क्षु. धर्मदास ) कहता हूँ । ये ( श्री सिद्धगणान् ) कि करिष्यन्ति । रागादि विकल्परहित समाधि भजन्तः सेवमानाः । क्या है समाधि?

समेकी भावे वर्तते तथा च प्रयोगःसंगतं तैलं संगतं घृतम्

इत्यर्थः एकीभूतं तैलं एकीभूतं घृतमित्यर्थः । समाधानं मनसः

एकाग्रताकरण शुभोपयोगे शुद्धे वा ।

( मनको एकाग्र करना, सम शब्दका अर्थ एकरूप करना ऐसा है । जैसे घृत संगत हुआ, तैल संगत हुआ इत्यादि

मनको शुभोपयोग मे अथवा शुद्धोपयोगमे एकाग्र करना यह समाधि शब्दका अर्थ हुआ ।

सिद्धजीव तो शुद्धोपयोगमे एकाग्र रहते है । ध्येय और ध्याताका एकीकरणरूप समरसीभाव ही समाधि है । तथा स्वरूपमें चित्तका विरोध करना समाधि है ।

रागादि विकल्परहित समाधि और निर्विकल्प समाधि एक ही है । ( अध्यात्मभाषया ) शुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधिसाध्यागमभाषया रागादिविकल्परहितशुक्लध्यानसाध्येवा । अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूति लक्षण है जिसका ऐसी निर्विकल्प समाधि साध्य है । और आगमभाषासे रागादिविकल्परहित शुक्लध्यान साध्य है ।

यह इसलिए कह रहा हू कि रागादि जो है उनसे रहित होना यही निर्विकल्प अवस्था है । ऐसी निर्विकल्प अवस्थामें सिद्धजीव अनंतकाल रहते है ।

परमसमाधि और निर्विकल्प समाधिभी एकही है ।

परम आराध्य जो आत्मस्वरूप उसके ध्यानमें लीन जो तपोधन वे शुभअशुभ मनवचन कायके व्यापारसे रहित जो शुद्धात्मद्रव्य उससे विपरीत जो अच्छे बुरे भाव उन सबको छोड़

देते हैं , समस्त परद्रव्यकी आशासे रहित जो निजशुद्धात्म स्वभाव उससे विपरीत जो इसलोक परलोककी आशा वह जबतक मनमें स्थित है तबतक यह जीव दुःखी है , ऐसा जानकर सब परद्रव्यकी आशासे रहित जो शुद्धात्म द्रव्य उसकी भावना करनी चाहिए ।

कैसे है सिद्ध भगवान ?

अपेक्षारहित जैसे हैं वैसे हैं ।

प्रमाण व नयके विषय परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा करते हैं अथवा एक नयका विषय दूसरी नयके विषयकी अपेक्षा करता है , इसीको सापेक्ष तत्त्व कहते हैं । निरपेक्ष तत्त्व इससे विपरीत है ।

सिद्ध जीवोंका जो ज्ञान होता है , वह निरालंब स्पष्ट होता है इसलिए किसी नयका आश्रय लेनेका कारण ही नहीं है ।

प्रश्न :- निरपेक्ष रहकर भी तंतु अदिकमें तो शक्तिकी अपेक्षा पटादि कार्य विद्यमान है ( पर निरपेक्ष नयमे ऐसा नहीं है, अतः दृष्टांत विषम है । )

उत्तर :- यही बात ज्ञान व शब्दरूप नयोंके विषयमें भी जानना चाहिए । उनमें भी ऐसी शक्ति पायी जाती है , जिससे वे कारणवश सम्यग्दर्शनके हेतुरूपसे परिणामन करने समर्थमें है । इसलिए दृष्टांतका दार्ष्टान्तके साथ साम्य ही है । ( पहले जो प्रश्न उठाया, उसका कारण यह है कि, ऐसा सिद्ध किया जाता है कि, परस्पर सापेक्ष रहकर ही तन्तु आदिक पटरूप कार्यका उत्पादन करते हैं । )

हे भव्यात्मन्, सिद्ध भगवानको तो प्रत्यक्षानुभूति होती है, इसलिए उन्हें निश्चय व्यवहारादिके विकल्प नहीं रहते । तत्त्वान्वेषण कालमें ही व्यवहार नश्चयादि नयका आश्रय लिया जा सकता है, किन्तु जब आत्माकी आराधना चलती है तो विकल्प नहीं होते, क्योंकि सिद्ध भगवानको तो आत्मा प्रत्यक्ष ही है । प्रत्यक्षानुभूति तो नय पक्षोंसे अतोत है ।

य एव समस्तं विकल्पमतिक्रमति स एव समयसारं विन्दति ऐसा स्पष्ट रूपसे कहा गया है । सिद्ध भगवान तो स्वयं कार्य परमात्मा बने हुए हैं, अतः वह समयसार स्वयं हैं । अतः सिद्ध है, विकल्प नहीं रहते ।

बात ऐसी है कि, व्यवहार या निश्चय इन दोनोंमेंसे किसी एक नयका अथवा उभय नयका विकल्प करनेवाला यद्यपि उस समय अन्य नयका पक्ष नहीं करता पर विकल्प तो करताही है । समस्त नय पक्षको छोड़नेवालाही विकल्पोंको छोड़ता है और वही समयसारका अनुभव करता है ।

इतना लिखनेका प्रयोजन तो यही है कि, हम जान जाए कि ज्ञान निरपेक्ष होता है और अनुभव निर्विकल्प होता है ।

अहो सिद्ध भगवानकी महिमा अगम्य है ! उनका चिंतन करनेसे अनुपम आनंद होता है ।

आग ज्ञान निरपेक्ष होता है और अनुभव निर्विकल्प होता है , इसका कुछ स्पष्टीकरण देंगे । ..... उसके बाद सिद्धाष्टक ..... ..

शंका :- कैसे है सिद्धजीव ?

समाधान :- कह तो दिया निरपेक्ष जैसे है वैसे है । और सुनो निर्विकल्प जहां है वहां है :

शंका :- विकल्प क्या है ?

समाधान :- मैं सुखी हूँ अथवा मैं दुखी हूँ इस प्रकार जो अंतरंगमे विवादरूप परिणाम होता है, वह विकल्प है । और सुनो

वास्तवमें जो संकल्प है वही विकल्प है । विकल्पसंकल्पकी पर्याय है ।

शंका :- सिद्ध जीवोंको ज्ञान तो होता है न ? फिर वे निर्विकल्प है, कैसे संभव है ?

समाधान :- सिद्ध जीवोंका जो ज्ञान होता है, वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है ।

शंका :- और कही, जाने बिना तो ज्ञान होता ही नहीं ।

समाधान :- ऐसा नहीं है । वास्तवमें स्वयंज्ञान चेतनारूप जो शुद्ध स्वकीय आत्माका उपयोग होता है, वह संक्रान्त्यात्मक न

होनेसे निर्विकल्प है ।

शंका :- विकल्प क्या है, अधिक विस्तारसे कहो ना ?

समाधान :- कह तो दिया विषादरूप परिणाम है वय विकल्प है, और सुनो राग-द्वेष-मोह यह विकल्प है ।

शंका :- राग, द्वेष, मोह एक है या अलग है ?

समाधान :- जैसे वस्त्रमें खड़े और आड़े तंतु होते हैं, वैसे ही राग और द्वेष है ।

शंका :- राग-द्वेष तो जानता हूँ, पर मोह कैसे आता है ?

समाधान :- पुरुष होना सो मोह है, शास्त्रोंमें माता है, सामान्येन दर्शन चारित्र मोहनीयोपजनिता विवेकरूपो मोहः और

शुद्धात्म श्रद्धानरूप सम्यक्त्वस्य विनाशको दर्शन मोहाभिधानोमोहः ।

शंका :- मोह का नाश करनेकेलिए अरहंतके जानो ऐसा क्यों कहा । है ?

समाधान :- अरहंतको जाननेसे आत्माका ज्ञान होता है और मोहका नाश होता है ।

शंका :- जाने अरहंतको और ज्ञान हो आत्माका, ऐसा क्यों ?

समाधान :- क्योंकि दोनोंमें निश्चयसे अंतर नहीं है ।

शंका :- जिसको स्वकल्याण करना है उसकी स्वपर विवेक करना क्या?

समाधान :- जिसको अंतर आत्माका प्रेम है, उसने भेद विज्ञानसे आधार पर आत्माको पृथक् करके चिदानंदमय आत्मामें लगाए, ऐसे आत्माके विकार भरी मोहका प्रादुर्भाव नहीं होता ।

शंका :- मोहको नाश करना कोई काम नहीं है ?

समाधान :- हां, जो परमात्माको जानता है, वह पर द्रव्यमे मोह नहीं करता ।

चलिए ! सम्यकत्वकी प्रभातमें आत्ममंदिरमें जाकर मंगलमय आत्माराम भगवानकी पूजा करें । ज्ञान शरीरको सम्यक्ज्ञानसे निर्मल करे । सर्वस्व ज्ञान क्यों है ? अर्थात् ज्ञान भी शरीर और उसको निर्मल करनेकेलिए सम्यक्ज्ञान

? शरीर भी ज्ञान, जल भी ज्ञान, ज्ञान आत्माका असाधारण गुण है । ज्ञान लक्षण है और वह आत्माको प्रसिद्ध करता है । ज्ञान है सो कोई भी ज्ञान ऐसा नहीं है, जो ज्ञान अंतर्मुख होकर आत्माको जानता है वह ज्ञान आत्माका लक्षण है । इस ज्ञानरूपी जलको स्याद्वाद से निर्मल किया जाता है । तो चलिए आत्मारामकी पूजा करने पूजा क्या है ? पहिले ऐसा निश्चय किया जाय कि पूजा क्या है ? यहां पोषाण पूजा या रत्नपूजा आदिका प्रश्न है ही नहीं । है केवल आत्मदेवकी पूजा का आत्मदेव देवालयमे नहीं है, पाषाणकी मूर्ती लेप या चित्रामकी मूर्तीमें नहीं, वह देव अविनाशी है, कर्म अंजनसे रहित है । केवलज्ञान कर पूर्ण है, ऐसा निज परमात्मा स्वभावमें निष्ठ रहा है । आराध्य परमात्मा है, आराधक में ( आत्मा ) हूँ । जो परमात्मा है वह ही मैं हूँ तथा जो स्वानुभवगम्य में हूँ वही परमात्मा है, इसलिए मैं ही मेरे द्वारा उपासना किया जाने योग्य हूँ । ऐसी निश्चय धारणा करों इस अवस्थाको समरस होना भी कह सकते हैं । विकल्परूप मन भगवान आत्मारामसे मिल गया और परमश्वर भी मनसे मिल गया । तो दोनोंहिको समरस होनेपर किसकी पूजा करे । अर्थात् निश्चयनयकर अब किसीको पूजना सामग्री चढाना नहीं है । यह तो भाव पूजा है । आराध्य है सो परमेष्ठी है । और परमेष्ठी आत्मामेंही स्थित है, अतः वह ही मुझे शरण है । ... .. क्यों करना है पूजा ? पापके नाश हेतु ? क्या सचमुच पाप विनाश होता है पूजा से ? भव्यात्मन्, धवलमें तो ऐसा आता है कि, जिनदेव वंदन, आदि जीवोंके पापके विनाशक नहीं है, क्यों कि ऐसा होनेपर



वीतरागताके अभावका प्रसंग आवेगा । तब पारिशेष रूपसे जिन परिणत भाव और जिनगुण परिणामको पापका विनाशक स्वीकार करना चाहिए । भावपूजाको अधिक स्पष्ट करने समझानेकेलिए, ध्यान रखे -

१ मनमें अर्हन्तादिके गुणोंका चिंतन करना भाव पूजा है ।

२ अनंत चतुष्टय गुणोंकेचिंतन-किर्तन करकेजो वंदना की जाती है वह भावपूजा है ।

ओम जिनेंद्र गुण गानको

भाव पूजा जानो ।

३ चार प्रकार का ध्यान भावपूजा है ।

चलिए । अधिक कहनेसे क्या लाभ ? केवल कहते रहनेसे क्या लाभ ?

देखिए, सिद्ध समूहको पूजनेवाला पात्र तो भव्य जीव है सहज दूसरा पात्र तो मन है, जो पूजा के लिए परमावश्यक है ।

सहज सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ ।

१) प्रथम तो अपने मनरूपी मणिके पात्र में भरेहए समता रसरूपी अनुपम रसकी धारासे केवल ज्ञानरूपी कलासे मनोहर सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ । जलं

२) सुगंधित चंदनसे अनुपम गुण समूहके नाशक सहज सिद्ध-पूज्य बडेसेबडे समस्त दोषोंका शोधन करनेमें समर्थ स्वभावरूपी सहज रुसे कर्म कलंकको नष्ट करनेवाले ऐसे निर्मल भावरूपी । गंधं

३) स्वच्छ चावलोंसे अप्रतिहत ज्ञानकेधारी सहज सिद्ध परमात्मा की मैं पूजा करता हूँ अक्षतं

४) सहज क्रियारूप करकेद्वारा शोध गई आत्म स्वभावरूपी सुंदर फूलोंकी सुशोभित मालासे उत्कृष्ट योगकेबलसे वशमें किये गये सहज सिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ । पुष्पं

५) जन्म, जरा और मरणको नष्ट करनेवाले सहज ज्ञानरूपी सुंदर नैवेद्यसे अमर्याद और प्रचुर आत्मगुणोंकेनिकेतन सहजसिद्ध परमात्मा की मैं पूजा करता हूँ । चरुं.

६) भोगकांक्षारूपी अंधकारको नष्ट करनेवाले सहज सम्यकत्वरूपी दीपकसे निरवधि आत्म विकासद्वारा विकासको प्राप्त हुए सहजसिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ । दीपं.

७) आत्म गुणोंके घातक कर्म मलोंको नष्ट करनेवाली अपने अक्षय गुणरूपी धूपसे विशद बोध और अनंत सुखस्वरूप सहजसिद्ध परमात्माकी मैं पूजा करता हूँ । धूपं.

८) सहजरूपसे कुभाव भावोंका शोधन करनेवाली उत्कृष्ट भावरूपी फल संपत्तिसे अपने गुणोंका स्फुरण होनेसे निरंजन पदको प्राप्त हुए सहजसिद्ध परमात्माकी में पूजा करता हूँ । फलं.

समतारस, निर्मलभाव, स्वभाव, आत्मस्वभाव, सहजज्ञान, सम्यकत्व अक्षय गुण और उत्कृष्ट भाव इन आठों भावोंमें कुछ समानता है ; ऐसी समानता है जो परस्परोंमें अभिन्नता स्थापित करती है वह

क्या हो सकती ? जल चंदनादि द्रव्योंमें क्या कुछ रूपक हो सकता है ? क्या अष्टद्रव्य किसी विशिष्ट भावोंका प्रतिनिधीत्व करते है ? किन भावोंका इसका हमें आगे विशद करना है । -

पहले हम लिखे उन भावोंकी गिनती की है । सूक्ष्मतासे

जल :- समतारस .	इने देखनेपर हमे यह ज्ञान होता
चदन:- निर्मलभाव .	है की इन भावोंको रत्नत्रयमें बांटा
अक्षत :- स्वभाव .	गया है ।
पुष्य:- आत्मस्वभाव .	पूजा-अर्चाका अंतिम ध्येय तो रत्नत्रय है ही, इसमें
शंका लेना व्यर्थ है ।	
चरु:- सहजज्ञान .	अब इनको जल चंदनादि उपमा ओंमें दिखाया है तो
हम भी कुछ	
धुप:- अक्षय गुण .	तर्कसामने रखते है । जलकेसंबंधमें
फल :- उत्कृष्टभाव .	तर्क-

जलके अनेक गुणोंमें मल नष्ट करना यह एक प्रमुख गुण है । आत्मामें पर सत्ताको स्वीकार करनेरूप जो मल लगा है वह तो अपने निर्मल आत्मामे समर्पित हुए बिना दूर नहीं हो सकता ।

व्यवहार दृष्टीसे भी जब तक सुख-दुख जो अपने और परके हों, उनका समान रूपसे चिंतन किये बिना या मध्यस्थ रहकर विचार किये बिना अंतरंगमें निर्मलता नहीं आ सकती

इसी प्रकार चंदनादिका तर्क कर सकते है ।

ऊपर जो भाव है , स्वभाव है । परभावसे तो छुटाकर लेना है । आत्माके स्वयंसिद्ध, तर्कागोचर, नित्यशुद्ध अंश आत्माका स्वभाव है । अपने असाधारण धर्मके द्वारा होनासो स्वभाव कहा जाता है , वस्तुक स्वभावको धर्म कहते है । स्वसंवेद्य निरुपाधिक ही वस्तुका स्वरूप है , वही वस्तुका स्वभाव है । ऐसी कुछ व्याख्यामें ध्यान ले ।

प्रवचनसारमें एक बहुत अच्छी बात कही गयी है -

द्रव्यस्य कःस्वभाव इति पृष्ठे गुणपर्यायाणामात्ना एक स्वभाव इति- इस व्याख्यासे तो स्पष्ट है कि. आत्मामें गुण पर्याय होते है । औरभी कहा है कि, स्वभाऽस्तित्वसामान्यान्वयः। यहां उन्वय होता है यह महत्वकी बात कही गई है

यहा कोई प्रश्न कर सकता है कि, स्वपर स्वभावकी चर्चा कर रहे है , और उपमाओंका आत्मामें घटा कर तर्क भी कर रहे है, यह कैसा ? दोनोंमें परस्पर विरोध दिख रहा है ?

समाधान ऐसा हैं कि, स्वभावमें तर्क नहीं चलता । स्वपर जो तर्क कर रहे है, यह भी स्वभावकी

समझनेकेलिए है । हम स्वभावमे तर्कनी कर रहे है, कल्पनाओंमें तर्क कर रह है ।

पूजाकेबारेमें धवलग्रंथमें आता हूँ ।

चरु-बलि- पुष्प -फल-गंध धूप दिवादीहिं

सगभक्तिपगासो अच्चना । ( ध. मु ८ पृ. ९२ )

इस श्लोकको ध्यानसे देखो तो जलाहिदिक का क्रम व्यस्त लगेगा । क्योंकि प्रचलित क्रम इस क्रमसे अलग है । औरभी एक विशेष बात है कि इनमें सात ( चरु बलि, पुष्प, फल, गंध, धूप, और दीप ) द्रव्यभी गिनाये है । आदि शब्दसे संख्या बढ़ सकती है ।

भक्तिको प्रकाशित करना है -

ऐंसाभी तक किया जाता है किश् जब धवलादि लिखे उसे उस समय पूजाके द्रव्योंमे जल गिनाया नहीं जाता था । जल तो न्हवन अभिषेक क लिए लिया जाता है और न्हवन पहले होता है । पूजासे पहले हो चुका होता है । कुछ भी क्यों न हो, आज को रीति सर्वसान्य है । ध्यान रहे हम अहिंसाकेपुजारी है, ऐसा कोई भी द्रव्य नहीं होना चाहिए जिससे जीवोंकी हिंसा हो । द्रव्योंका उपयोग विवेक तथा संयमे करना चाहिए । सबसे पहले श्रद्धामें ऐसा निश्चय कीजिए कि, पूजा निर्जराकेहेतु होती है । मोक्षकेलिए होती है । आश्रव बंधके लिए नहीं । आश्रव बंधके लिए तो असंख्याते कर्म है, पूजाको उसके लिए उपयोगमें

लाना ठीक नहीं । प्रभावना प्रिय लोगोंको यह बात अच्छी नहीं लगेगी किन्तु हमें वीवरागी होना है । रहना है ।

भगवती आराधनामे मोक्षप्राप्ति होनेतक ऐसा कहा है । भाव पाहुडमें भावरूप शस्त्रसे संसार बेल की जड मिथ्यात्व नष्ट करनेको प्रेरित किया है ।

कषाय पाहुडमें असंख्यात गुणी निर्जराका कारण बताया है ।

- १) पुण्य होता है निर्जरा करनी पडती है ।
- २) पुण्य करना पडता है, निर्जरा होती है ।
- ३) पुण्य होता नहीं तो निर्जरा भी होती नहीं ।
- ४) पुण्य होन हो निर्जरा करेंगे ।
- ५) निर्जरा हो न हो पुण्य तो कर लें ।

इस प्रकारकी मनुष्यकी भाव प्रणालीयां है । जिनकी थोडी चर्चा करनेकेबाद निर्जराकी ओर प्रेरित करेंगे और फिर जयमाला शुरु हो जायगी । णमो सिद्धाणं - ११ से ( संभवत- )

२०४० गुण स्मरणका शुभारंभ होगा ।

पूजा शब्दमें पू का अर्थ है पवित्र होना । पूज्य होता है पवित्र पूजक को होना है पवित्र । पूज्य पूजकमें अभेद लाना है पूजकको । पू का दूसरा अर्थ है मांजना उजली दीप्तिमान वस्तुको कौन साफ करे ? साफ तो मनको करना है । उसमे सुलभता आनेकेलिए शरीरको हम मांजते है । मलको निकालने और शरीरको साफ करनेरूप क्रियाएं दो नहीं है, किन्तु ध्यान रहे मल की और ध्यान न दे । कितना है, कैसा है क्यों है ? इनसे हमें क्या, हमें तो शरीरको साफ रखना है । कर्म कितने है, कैसे है क्यों है इन प्रश्नोको समझ लेना ठीक है, किन्तु उसमेंही उलझते रहना कहांतक ठिक होगा ? साधकको तो ध्येयपर ही आँख रखनी है । ध्येय तो वीतरागकेसिवा और होना तो नहीं चाहिए ।

पू- का अर्थ फटकना ऐसी भी है । सूपडेमें ध्यान, जल आदि लेना और उसे इस तरह चलाना कि भूसा या छिलका बाहर जाए और सारबात जो है बचा रहे, सूपमें । सूप क्या है ? आत्मा है । कर्मोका कूडा कचरा तो ही, किन्तु ध्यान चिंतन ऐसा रहे कि यह कूडाकचरा फेक दिया जाय । पूजा उसको फेकनेका साधन है । भंगुर और ध्रुवका मेला होता हि है । किसीने चिंतनकेझरोखेसे शब्दोंकी रचना इस प्रकार को है ।

मल - शुद्ध आत्माके सिवा, चैतन्यके सिवा जितने भी परजनित भाव है, मल है। उनसे दूर होना है, रहना

है।

माल - संग्रह करनेसे माल पासमें होता है। स्वयं शाश्वत अनंत निधीका स्वामी होनेपर वास्तविक

कुछ दूसरा संग्रह करनाठीक नहीं है।

माल मालाको भी कहते हैं। मालाके फूल गुंथनेके बाद क्रम बदल नहीं सकते। सब कुछ क्रमबद्ध

होनेपर ही माल बनी रहती है। आत्माके अनंत गुणोंमें व्यवस्थित तालमेल है। तालमेल न हो ऐसा

चैतन्यही नहीं हो सकता।

मील - हम कितना चले हैं, कितना चलना है, अंतर कितना है, इन सब बातोंको समझनेकेलिए मील

संज्ञा है। अंतरंग कितना ऊंचा है तथा ध्येयकी ओर कितना बढे है, अभी कितना बढना है, यह

समझानेवाली पूजा होती है।

मूल - कर्मोका मूल क्या है? आत्मशुद्धीका मूल क्या है? यह तो जाननाही चाहिए। लेकिन केवल

जाननेसे उसमें ज्ञान नहीं आ सकती। मूल जाननेके बाद निश्चयसे निश्चित क्या करना है,

यह समझना मूल है।

मेल - मेलका संबंध तालमेलसे है। तालमेल विवेकसे होता है। पूजा एक अनुकरण माल है। कितना

अनुकरण करना है? क्या कभी छोडना नहीं? अनुकरण, बोध, पुरुषार्थ इसमें कुछ तो मेल

अवश्य होना चाहिए फिर चिदानंद दूर नहीं

मोल - सिद्धत्वका मोल क्या करे? मोल करनेके लिए वजन कीमत Quantity कुछ तो चाहिए।

सिद्धत्वको तो कोई तोलही नहीं सकता । निरुपम जो है । कीमत भी कैसे करें ।

सिद्धत्वका मोल सिद्धत्वही है ।

तरंग -

मी शुद्ध सिद्ध मजला माझाच संग झाला ॥

माझ्यात रंगण्याचा, पहिला प्रसंग आला ॥

माझाच मी असे हा माझा अभंग झाला ॥

टाळस ताल द्याया माझा मृदंग आला ॥

माझ्यात रंगणारा, माझाच रंग झाला ॥

मजला अपार प्यारा माझा तरंग आला ॥

पूजाका अर्थ तो देखलिया, लेकिन केवल अर्थ देखनेसे क्या ? देखो आजकल Electricity का उपयोग बडी मात्रामें है । तो पूजक प्रदर्शनकेलिए बडेबडे बल्ब लगाए जाते है प्रकाशकी और आकर्षित होकर कीडे मरते है, पैरोंतले कुचल कर तो इसी प्रकार पुण्यके प्रकाश की ओर आकृष्ट होकर मनके भाव कीडे कुचल दिये जाते है, लोभके पैरोंतले । और दिखिए , आजकल रेडिओ, टेप व्होडीओ, स्टीरिओ आदि साधनोंको भरमार है । पूजामें बादकी जरूरत होती है । इसलिए इन साधनोंका उपयोग किया जाता है वही नाद शोरमें बदल जाता है विवेक न हो तो । उसी प्रकार पूजाकेलिए प्रशस्त भावकी जरूरत होती है वही प्रशस्तभाव आसक्ति, विकारमें बदल जाता है । जब हम किसीकेलिए याचना करते है । पूजा आराधनाके समय इनका उपयोग कर तो हुए भी अपना विवेक जागृत करो, रखो । पूजा करते हुए हम भगवानके नजदीक पहुँचते है, तो ज्यों ज्यों एकात्मता पुष्ट होती जाती है, जीव पूर्ण सिद्धांत और निःश्रंयस की और बढ़ता, हुआ अंततः सोऽहम् केकिन्तु तक पहुँच जाता है । क्योंकि पूजामें हमारा हृदय-तत्त्व धुल जाता है । आपए कुछ प्रश्नोत्तर करें ।

प्रश्न:- क्या पूजाकेपीछे कोई दार्शनिक विचार है ?

उत्तर :- हां, उस विचारका नाम है, आत्मदर्शन ।

प्रश्न :- थोडा चिंतनकेबारेमें कहिए ?

उत्तर :- क्या कहें, स्वपर विवेक होता है, होना चाहिए ।

प्रश्न :- कहीं भेद विज्ञान तो नहीं कह रहे हो ?

उत्तर :- हां, भेद विज्ञान पूजाकी रगरगमें है । रंगमें भी है ।

कुछ लोग पूछते हैं, मन पूजामें लगता नहीं तो क्या पूजा निष्फल होती है ?  
उत्तर है, उनके लिए, कि पूजा निष्फल नहीं होती, पूजक निष्फल होता है, जब पूजक एकाग्र  
नहीं हो सकता । तो, जो कुछ होता है । वह पूजकमें होता है, पूजामें नहीं ।

अब मैं परमात्म प्रकाश इस ग्रंथका एक दोहा यहां उद्धृत करूंगा जो बहोत  
महत्वपूर्ण है ।

जहे निम्मलू णाणमउ सिद्धिहि णिवसई देउ ।

तहेउ णिवसइ बंभु वेहहं मं करि भेउ ॥

जैसे कार्य समयसारस्वरूप निर्मलज्ञानस्वरूप देव सिद्धलोकमें  
रहते हैं, वैसा ही कारण समयसारस्वरूप परब्रह्म शरीरमें निवास करता है ; अतः तू सिद्ध  
भगवान और स्वयंमें भेद मत कर । टीकामें आग कहा है, यादृशः केवलज्ञानादि व्यक्तिरूपः  
कार्य समरसमय निर्गलो भावकर्मद्रव्य कर्म नोकर्म मलरहितः,  
ज्ञानमयः केवलज्ञानानेन निर्वृतः केवलज्ञानान्तर्भूतानन्त गुणपरिणतः सिद्धो मुक्तो मुक्तौ  
निवसति तिष्ठति ब्रह्मा शुद्धबुद्धेकस्वभावः परमात्मा पर उत्कृष्टः । नच निवसति । देहे । केन,  
शुद्ध द्रव्यार्थिक नयेन । कथभूतेन । शक्तिरूपेण प्रभाकरभट्ट भेद या कार्षीस्त्वमिति । .....  
ऐसा स्पष्टरूपमें कहा है ।

ओम -ही सम्यक्त्वाय नमः । सम्यक्त्व = सम्यग्दर्शन परमात्मतत्त्व उपादेय है,  
उसमें रुचि सम्यक्दर्शन  
है । सम्यक्दर्शनको जब चर्चा होती है तो तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्दर्शनम् यह सूत्र सामने आता  
है । तत्त्वका श्रद्धान तथा अर्थका श्रद्धान ऐसा भेद न करके तत्त्वार्थश्रद्धान ऐसा कहा गया है;  
क्यों ? तत्त्व सिद्धात् कहनेसे भाव मात्रके ग्रहणका  
प्रसंग आएगा तथा अर्थश्रद्धान कहनेसे धन प्रयोजन अभिधेय आदि किसने भी उसमें  
समाए जाएंगे । ऐसा भी कह सकते हैं कि, केवल तत्त्व श्रद्धान कहनेसे ठीक अर्थ  
नहीं निकलेगा तथा केवल अर्थश्रद्धान कहनेसे भी ठीक तत्त्व नहीं निकलेगा ।

प्रश्न :- सम्यक्त्व क्या है ?

उत्तर :- ( इति मौन )

प्रश्न :- मौन क्यों हो ?

उत्तर :- क्या कहूं सम्यक्त्व अनिर्वचनीय है ।

प्रश्न :- फिर आचार्यों ने क्यों कहा है ?

उत्तर :- सम्यक्त्व यह निजी सर्वोत्तम धन है , जिसका बोधन होना परमावश्यक है, इसलिए भव्य जीवोंकेलिए संबोधन

करना पडा । और .... ....

प्रश्न :- और भी कुछ कहना चाहते हो ?

उत्तर :- सम्यक्त्व अनुभूतीकी चीज है । कहना होगा शुद्धात्माही उपादेय है । रहना होगा शुद्धात्मामे ही । इति धारा शॉवर वर्तमानसे यंत्र युग है , हम तो यूँ कहेंगे कि सम्यक्त्व रिफ्रिजरेटर या यंत्र धारागृह है । स्पष्ट है कि, प्राणी संसार आतापसे सदा तप्तायमान रहता है, उसकेलिए सम्यक्त्व हिमालयके समान शीतल यंत्र धारागृह है ।

प्रश्न :- इतना अगर महत्व है तो उसके प्राप्तीके लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर :- भूतार्थरूपसे जाने गए जीवादि नौ पदार्थोंका शुद्धत्मासे भिन्न करके सम्यक् अवलोकन करना चाहिए रुचि महत्वपूर्ण है । जीवके जीवकी रुचि होना एक उद्विष्टसे निर्जीवकी रुचि तो शुद्ध जीवास्तिकायकी होना चाहिए प्रश्न :- रुचि आनेके लिए चिंतन आवश्यक है, तो चिंतन क्या करें ?

उत्तर :- रागादि विकल्प रहित चित् चमत्कार भावनासे उत्पन्न मधुर रसके आस्वाद रूप सुखका धारक मैं हूँ, ऐसा चिंतन हो । थोड़ेसे सार यह है कि, नय पक्ष रहित जो समयसार है वही सम्यक्त्व है और एक मात्र उपादेय है ।

प्रश्न :- सम्यक्त्वका मैं क्या कहूँ ? रत्न, अमृत या कल्पवृक्ष

उत्तर :- केवल कहने माननेसे नहीं चलेगा। जो स्वानुभवगम्य है क्या कहे ? फिरभी कहना ही है तो हम कहेंगे कि सम्यक्त्व तो निस्पृहके लिए रत्न है, निर्मोहीके लिए अमृत है तथा वीतरागीके लिए कल्पवृक्ष है। यथार्थमे सम्यक्त्व जैसा है वैसा है, वैसाही ( अनुपम ) है, वैसा है ही है । इति अलम् ।

ओम -ही अनंतज्ञानाय नमः ॥२ ॥

ओम -ही अनंतदर्शनाय नमः ॥३ ॥

प्रश्न:- धातिया कर्मनिकेचतुष्टयका नाश होते चतुष्टयकी उत्पत्ति हो है । अनंतपन कैसे संभव है ?

उत्तर:- सादि कहिये उपजने कालविणै आदि सहित है तथापि अपर्थनसिता कहिए अवसान या गन्त ताकरि रहित है तातै अनंत कहिये । अथवा अविभाग प्रतिच्छेतेदनिकी अपेक्षा इनको उत्कृष्ट अनंतानंत मात्र संख्या है तातै भी अनंत है ।



इस प्रकार अनंतपन है तो शब्दोंमें क्या कहे। फिर भी कहे बिन समझ नहीं हो सकती इसलिए कहनाही होगा। सूर्यका प्रकाश तथापि उत्कृष्ट माना जाता है, परंतु वहभी अल्पमात्र क्षत्रको प्रकाशित करता है। ज्ञान प्रकाश समस्त जगत्को प्रकाशित करता है। जगत्को प्रकाशित करना कोई महत्व नहीं रखता; महत्त्व तो है आत्म सन्मुख होकर आत्माकी प्रसिद्धि करनेको। भगवान तो निजद्रव्यको जाननेके लिए ही अन्य छह द्रव्योंका कथन करते हैं। निजद्रव्यको जानना बैठे हैं। ज्ञानकी महिमा अगम्य है, श्री समंतभद्राचार्य कहते हैं - शोकक्षय - कृदव्याधे पुष्पदंत स्ववत्पते लोकत्रयमिदं बोधे गोपदं तव वर्तते। औरभी कहते हैं - यज्ञानान्नगीतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते। यह भी स्थूल है। वास्तविक, आत्माकी एक समयकी ज्ञान पर्यायमें अनंत सिद्ध और केवली भगवंत ज्ञेयरूपसे आजाये ऐसा एक एक पर्यायका अनंत सामर्थ्य है। अनंत ज्ञानको नमस्कार हो। स्वप्रतिभास है वह दर्शन है। आत्मा स्वयं ही अनंत धर्मोंके समुदायरूप परिणत एक ज्ञानीमात्र भावरूप होनेसे आत्मामें अनंत धर्म एक साथ है; आगे पीछे नहीं। इसीसे दर्शन अनाकार उपयोगमय है। भेद लक्ष्यमें ले वह ज्ञान है, सामान्य रूपसे सत् है ऐसी सत्तामात्र देखना दर्शन है सामान्य सत्तारूपसे सब सत् है। गुण सत् है और पर्याय भी सत् है। यह सत् की सावधानी (स्व. परकी) स्वरूपकी सावधानीके साथ अनंत काल तक जागृत रहती है। मैं त्रिकाली हूँ यह स्वीकार है। दर्शनकी प्रतीति यथार्थ करनेसे पूर्ण आत्माकी ही प्रतीति होती है अनाकार उपयोगरूप अनंत दर्शन कालकी अपेक्षासे अनादि अनंत है; परिणमन एक एक समयका है। क्षेत्रसे वह असंख्य प्रदेशरूप आत्माकार है। प्रदेशत्वके निमित्तसे जैसा आत्माका आकार है वैसाही अनंतदर्शनका आकार है। सत् स्वभावी भगवान् आत्मा अनंत गुणोंका भंडार स्वयं सिद्ध है। वह द्रव्य निरपेक्ष (अनंतदर्शन) है; उसका समय समर्थका परिमन भी दूसरोसे निरपेक्ष है। कुछ ज्ञातव्यदर्पणकी निजी स्वच्छ तावत् चेतनका निजी अंतर्चित्प्रकाश प्रतिभास दर्शन है। दर्शनरूप अंतर चित् प्रकाश तो सामान्य और निर्विकल्प है। आलोकनवृत्तिर्वादर्शनम्; अस्यगमनिका, आलोकइति-आलोकनात्मा, वर्तनंवृत्तिः, आलोकनस्य वृत्तिरालोकन वृत्ति स्वसंवेदनम्। दर्शन और ज्ञान आत्मामें होते हैं। तीनों एक पदार्थ स्वरूप होनेसे एक रस है ज्ञानज्ञाता ज्ञेयकी अथवा दर्शन

दृष्टा दृश्यकी भेद विवक्षा होनेपर तीनोंही परप्रकाशक है; तथा उन्हीमे अभेद विवक्षा होणेपर जो ज्ञान है , वही ज्ञाता है , वही ज्ञेय है , इ. इ. अतः स्वप्रकाशक है ।

प्रश्न :- त्रिकाल गोचर अनंत बाल पदार्थोमे प्रवृत्ति करनेवाला ज्ञान है और स्वरूप मात्रमे प्रवृत्ति करनेवाला दर्शन है, दोनोंमे समानता कैसी ?

उत्तर :- आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान त्रिकालके विषयभूत द्रव्योंकी अनंत पर्यायोंको जाननेवाला होनेसे सत् परिमाण है, इसलिए ज्ञान और दर्शनमे समानता है । अनंत दर्शनमयी सिद्धोंको बारबार नमस्कार हो

ओम -हीं अनंत वीर्याय नमः :

आत्मामे आनंत सामर्थ्य है. लेकिन किसका ? पर द्रव्यके ये परमाणूपर भी आत्माका सामार्थ्य नहीं है । पर द्रव्यके आश्रयसे भी नहीं है । आत्माका सामार्थ्य है स्वभावका, स्वद्रव्यका । आचार्योंने कहा है, निरंतर वीर्यमप्रतिन्त सामार्थ्यमनंतवीर्यम् । सामार्थ्य कभी हो, कभी नहीं हो ऐसा नहीं हो सकता । सामर्थ्य तो सदा सर्वदा बनाही रहता है । कभी कम हो कभी जादा हो ऐसा भी नहीं हो सकता । समार्थ्य तो सदाही परिपूर्ण होता है । अनंत वीर्यता तो इसीमे है । निजस्वरूपको रचनेका सामर्थ्य है उसमे अपूर्णतो कैसी है ?

प्रश्न :- क्या आत्मा निज स्वरूपकी रचना करता है ?

उत्तर :- स्वरूपका नबीन बनना नहीं है, बनाना भी नहीं है । आत्माकी सत्तानिज स्वरूपमे रहती है, स्थिर रहती है ; उसीका नाम स्वरूप की रचना है ।

आत्मा एक तत्त्व है, अखंड है, द्रव्यगुण पर्यायमय है । उस द्रव्य गुण पर्यायमयताको स्वरूपमे टिका रखे ऐसा सामर्थ्य । है और वह निरंतर है अप्रतिहत है । प्रत्येक गुणकी आत्माके अनादि अनंत कालकी अवस्थाओंमे प्रत्येक समयकी अवस्थाका वीर्य स्वतंत्र होता है ; उस अवस्थाका वीर्य ही अवस्थाकी रचना करता है । और रचना तो किसी परभावकी करना है ही नहीं । स्वभावकी ही तो रचना है । अलौकिक बात है । लौकिक उदाहरणसे कैसे समजाएं । आत्मा अलौकिक, वीर्य अलौकिक, गुण अलौकिक सब अलौकिक है, फिर लौकिकका क्या आधार लेना ?

कुछ लोग अनंततामे शंका लेते है । क्या लेते है ? तो कहते है आत्मासे अनंत गुण है, ठीक है ; किन्तु गुण गुण तो प्रत्येक है, एक एक है,

गिनतीकर सकते है ? अरे भव्यात्मन् आत्माके गुण अलग हो , गिनतीमे आ सके तो अनंतता रहेगी कैसे ? केवल मात्र संख्या ( Quantity ) मे गिनना और गिनते बहुलता पानेपर अनंत कहना; ऐसी अनंतता नमी है । यहां तो अनंत गुणोंमेसे किसी एकको ले, तो उसमे भी अनंतता है। संख्यामे अनंतता गुणमे अपूर्व बात है । अलौकिक बात है ।

प्रश्न :- मान लिया स्वभावकी रचना करनेका सामार्थ्य है , तो रचना करते हुए, कुछ तो कष्ट होगा ?

उत्तर :- ऐसा नही है । कृपानाथ परमगुरु कहते है, निज निरंजन परमध्याने पूर्व धैर्यमवलंबितं तस्यैन फल भूतमनंत पदार्थ दरिच्छित्ति विषये खेद रहितत्वमनन्तवीर्यम् । यहा खेद रहितत्वका विशेष महत्व है । आत्मा निजस्वरूप की रचना करे और रचना करते हुए वर्तमान समयमे कष्ट का अनुभव करे, तो अनंतता रही कहां ?

सारांश रूपसे कहे तो यूं कह सकते है कि , जब स्वभावका स्वीकार करे उसकी बल वीर्य स्वभावोन्मुख हुए बिना नही रहता और स्वभावोन्मुख होनेपर रचना सहज होती है पर्यायमे भी निर्मल पर्यायकी रचना होती है । यही अनंत वीर्य है । ऐसे अलौकिक अनंत वीर्यको धारण करनेवाले सिद्धोको मन वचन कायसे नमस्कार हो ।

ओम -ही सूक्ष्मत्वाय नमः ।

अब हम सिद्ध भगवानके सूक्ष्मत्व गुणकी स्थूल चर्चा करेंगे स्थूल क्यों ? सूक्ष्म चर्चा करनेका सामार्थ्य है ही कहा ? अतीन्द्रियज्ञान विषयम् सूक्ष्मत्वम् । इन्द्रियजन्य ज्ञानका विषय न होना सूक्ष्मत्व है अतीन्द्रियका अर्थ है , इन्द्रिय व्यापारसे निरपेक्ष मन की भी अपेक्षा नही । क्यों ? क्यों कि सिद्ध परमात्मा तो निर्विकल्प समाधिस्थ है । उस समाधिमे जो अनुभव होता है उससे जो सुख होता है, उसका अनुभवन तो क्या , कथन भी, स्पष्टीकरण या प्रकटीकरण भी सहायतासे नही होता । ऐसा अतीन्द्रिय है । और अतीन्द्रिय होनेसे सूक्ष्मत्व लोकोत्तर है । इस सूक्ष्मत्वसे सिद्धजीव परमानंद परिणत होते है । ऐसे अतीन्द्रिय सूक्ष्मत्व गुण विभूषित सिद्धीको नमस्कार हो ।

ओम -ही अवगाहनत्वाय नमः ।

एक दीपके प्रकाशमे जैसे अनेक दीपोंका प्रकाश समा जाता है, उसी तरह एकसिद्धके क्षेत्रमे संकर तथा व्यतिकर दोषसे रहित जो अनंत सिद्धोंको अवकाश देनेका सामर्थ्य है वह अवगाहन गुण है । सिद्ध जीव तो ऐसे अनंत गुणोंका भंडार है । देखो, कैसे कैसे अलौकिक गुण है । क्या मर्त्य लोकका मानव इनको छू सकता है ? नहीं । किन्तु चिन्तनका आथाग इतना विशाल है कि गुणोंको आगमसे जानकर अनुभूतिमय पहुंच सकते है । यहां प्रश्न .

प्रश्न :- जीव अनंतानंत है, उससे भी अनंतगुणे पुद्गल द्रव्य है, लोकाकाश प्रदेश प्रमाण काल द्रव्य है, तथा ए धर्म द्रव्य न एक अधमे द्रव्य है । असंख्यात प्रदेशी लोकमे ये सब कैसे अवकाश पाते है ?

उत्तर :- एक घरमे जिस प्रकार अनेक दीपकोंका प्रकाश समा रहा है ; जिस प्रकार एक छोटेसे गुटकेमे बहुतसी सुवर्णकी राशि रहती है, उष्टिरके एक घट दूधमे एक शहदका घडा समा जाता है, उसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी लोकमे विशिष्ट अवगाहन शक्तिके कारण जीवादि अनंत पदार्थ सहज अवकाश पा लेते है । सिद्धोंका अवगाहनत्व गुण जयवंत हो ।

ओम -ही अगुरुलघुत्वात्मक जिनाय नमः ।

आत्माकी शोभा आत्माके ही कारण है । आत्मामें षट्स्थान पतित वद्धि हानि तो है ही, ऐसा होनेपर भी वह अपने स्वरूपमे ज्यों का त्यों स्थित रहता है; एसा उसका अगुरुलघुत्व गुण है । यह गुण आत्माके स्वरूप प्रतिष्ठित पानेकी कारण है । कैसी अपूर्व बात है । ऐसो अपूर्व बातोंको सुनकर सम्यक्तीजीव स्वानुभूति करनेके लिए प्रयत्नशील होता है । अजी, अपने स्वरूपको छोडकर कदापि पररूप नहीं होना प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है । गुण पर्यायमभी वह व्याप्त है ।

आत्माकी बात करो तो पुण्यसे भी आत्माकी शोभा नहीं बनती । स्वरूप प्रतिष्ठित आत्मा स्वयंशोभायमान है । आत्मा परमात्मा होना इससे बढकर क्या शोभा हो सकती है ? परमात्मा दशा प्राप्त होनेपर वह अनंत कालतक बनी रहती है । यहा शिष्य प्रश्न करता है की गुरु और लघु दोनोंभी क्यों नहीं ? क्या एकसे काम नहीं चलेगा ? उसके लिए ज्ञानसिंधु गुरु समझाते है । देखो- यदि सर्वथा गुरुत्वं भवतिपदा लोहपिण्डवदधः पतनम्, यदिच सर्वथा लघुत्वं भवति

तदा वाताहतार्क तूलवत् सर्व दैव भ्रमणमेव स्यात्, न च तथा; तस्मादगुरुलघुत्वगुणोऽभिधीयते। देखो आत्मामे ज्ञान गुण है , वह भी त्रिकाल है , उसकी एक समयकी पूर्ण निर्मल केवलज्ञान अवस्थामे तीन काल तीन लोकके समस्त द्रव्य गुणपर्याय ज्ञात होते है, ऐसा अनंत सामर्थ्य है । विकल्प रहित ऐसे पूर्णशुद्ध स्वभावरूप केवलज्ञानकी महिमा अगाध है ; तो जिस द्रव्यके आधारसे केवलज्ञान प्रगट हुआ तो उस शुद्ध आत्माकी महिमा कहांतक लिखे । केवल ज्ञानकी एक पर्यायकी अपेक्षा दूसरी पर्यायमे जानतका सामर्थ्य न्यूनाधिक नहीं होता; सामर्थ्य ज्यों का त्यों बना रहता है; फिर भी अगुरुलघुगुणका सूक्ष्म परिणमन तो प्रति समय होता ही है ऐसे अचिंत्य गुणधारी सिद्धोंका नमस्कार हो ।

ओम -ही अव्याबाधात्वाय नमः ।

आत्माके सुखमे बाधा नहीं होती, इसलिए वे भव्याबाध होते है । बाधा क्या है ? कामादि जनित बाधा । अधिक कहने से क्या ? आचार्य करते है, वेदनीय कर्मोदय जनित समस्त बाधारहितत्वादव्याबाधा गुणश्चेति स्पष्ट है , वेदनिय कर्मका जब उदय होता है तो सुखमे बाधा होती है । सिद्धोंके तो समस्त कर्मक्षय हो गये है तो उदय कहा रहा ? कहनेको तो बहोत कुछ है, फिरभी थोडासा कहते है, ध्यानसे सुनो सहज शुद्ध स्वरूपानुभवसमुत्पन्नरागादिविभावरहितसुखामृतस्थ यदेकदेशसंवेदनं कृतं पूर्वं तस्थैव फलभूतम व्याबाधामनंतसुखं भव्यते । सुख तो अमृत तभी है , जब वह शुद्ध आत्माके आधारसे उत्पन्न हो । हम छद्मस्थ जीवका सुख तो वेदना प्रप्ती कारत्वात्कच्छ्रवण्डूयनवत् है, याने दादको खुजलानेके समान केवल वेदनाका प्रतिकार मात्र है । सिद्धोंका सुख संसारके विषयोंसे अतीत, स्वाधीन तथा अव्यम होता है । किसीभी प्रकारसे बाधा नहीं होती ।

ऐसे शाश्वत सुखोंके स्वामी सिद्धोंको नमस्कार हो ।

ओम

( अध्याय १ ला पूर्ण )